गुजरात के गाँधी और अयोध्या के राम

प्रफुल्ल कोलख्यान

पहले सामूहिक तौर पर और बाद में वैयक्तिक तौर पर भी लोग विभिन्न कारणों से अपना वासस्थान बदलते रहे हैं। औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने मनुष्य की गतिशीलता और आबादी के विस्थापन को नया वेगवर्द्धन दिया। औद्योगिक नगरों और व्यापारिक केंद्रों के बनने के कारण एक ओर बसी हुई आबादी उजड़ने लगी तो दूसरी ओर दूर-दूर से आये नये लोग बसने लगे। इस बास-प्रक्रिया से एक नये प्रकार की सामाजिकता का परिगठन प्रारंभ हुआ। इस नई सामाजिकता में परंपरा के कई अप्रासंगिक संदर्भों से पिंड छुड़ाने का अवसर सहज सुलभ हुआ तो इस क्रम में परंपरा के कई जिंदा तंतुओं के छिन्न-भिन्न होने का खतरा भी पैदा हुआ। नई सामाजिकता से बना नया परिचय आधुनिकता की परियोजना का अंश बना। वैश्वानर की पौराणिक आकांक्षा का ताल विश्व मानव की आधुनिक संकल्पना की लय में ढलकर जीवन संगीत की नई सुरलिपि सिरजने लगा। सृजन की इसी प्रक्रिया में निराला पुरातन वीणावादिनी के नवल कंठ से नव पर नव स्वर की माँग करते हैं। नया परिचय पुराने परिचय के पूरी तरह लोप हुए बिना उस पर लेप की तरह चढ़ने लगा, नये फूलों के खिलने से पुराना बाग पुनर्नवा होने लगा। परिचय की बहुस्तरीयता बढ़ने लगी।

परिचय, किसी से परिचय होने के प्रथम सोपान पर जो कुछ सवाल सब से पहले उछलते हैं उन में से एक सवाल होता है - आप का ‘घर’ कहाँ है? यही सवाल कभी-कभी कुछ इस तरह भी पूछा जाता है कि आप ‘कहाँ के रहनेवाले’ हैं? बिडंबना यह कि ‘घर’ पर कोई घर भले ही न हो, लेकिन नाम वहीं का लेना पड़ता है। मुमकिन है, ‘जहाँ’ के रहनेवाले हम अपने को बता रहे हों वहाँ से हमारा ‘रहनि’ का तो दूर, ‘आने-जाने’ का भी संबंध न बचा हो, लेकिन नाम वहीं का बताना पड़ता है। इससे इतर जवाब देने पर परिचय जानने के लिए उत्सुक आदमी हमें कुछ छुपाने का दोषी मान लेता है। दोषी नहीं भी माने तब भी उसे कुछ सहज नहीं लगता है, ऐसा व्यवहार। अभी हमारे एक मित्र अमित चक्रवर्त्ती कुछ दिन पहले पिंडदान के सिलसिले में गया गये

थे। पंडा ने उन से नाम और पता पूछा। उनके उत्तर से पंडा संतुष्ट नहीं हुआ। पंडे का कहना था, कोलकाता में चक्रवर्त्ती हुआ ही नहीं करते हैं! आप अपना असली स्थान बतायें। अब वे क्या बतायें! खैर, उन्होंने कई पुश्त पहले के वासस्थान के बारे में बताया तो पंडा ने अपना रिकार्ड पलट कर उनके कुछ पूर्वजों के नाम गिना दिये। चूँकि, परदादा का नाम उन्हें मालूम था, इसलिए पंडा के बताये नामों की सत्यता के बारे में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं थी।

हमारे एक पड़ोसी बंगाली ब्राह्मण हैं। वे बुजुर्ग और सचमुच भद्रलोक हैं। अपने पूर्वजों से प्राप्त जानकारी के हवाले से वे एक दिन बता रहे थे कि वे लोग मूलत: मथुरा के आस-पास कहीं के रहनेवाले हैं। मैंने हँसते हुए कहा कि लेकिन आज तो वे पूरी तरह बंगाली हैं। मथुरा का आदमी उनको शायद ही मथुरावासी माने। ठीक इसी प्रकार हो सकता है आज के किसी मथुरावासी के पूर्वज बंगाल के रहे हों और कई पीढ़ियों के बाद वापस आने पर उन्हें बंगाली मानने के लिए आप तैयार न हों। मनुष्य का मूल खोजना कठिन होता है; कई बार निरर्थक, भ्रामक और शरारतपूर्ण भी। कुछ लोग तो इतने ज्ञानी होते हैं कि अगर एक बार किसी के मूल के बारे में उनको पता चल जाये तो उसके पूरे चरित के बारे में सारी बातें वे उसी प्रकार बखान दें, जैसे घोड़े का व्यापारी घोड़े के बारे में बता देते हैं। हिटलरी घृणा शास्त्र के मूल में चकित कर देनेवाले ऐसे ज्ञान का भरपूर योगदान था।

प्रभुताई की महिमा अगम-अगोचर होती है। वह दिलोदिमाग पर इस तरह छा जाती है कि कई बार हमें इसका भान भी नहीं होता है। विश्व प्रभुओं के नये अवतारों के उत्तर-आधुनिकता के प्रेम-प्रबंध में मनुष्य के मूल की तलाश एक बार फिर जोरों पर है। यह जोर मूल के प्रति आग्रह को ललक के स्तर पर जीवन के एक अनिवार्य मूल्य के रूप में हासिल करने और मनुष्य को मूल-सचेती बनाकर मूल की तरफ मोड़ने के लिए भी कृतसंकल्प है। विनोदकुमार शुक्ल की कविता खुद के पूर्वज होने के समय की इस संवेदना को पकड़ने की कोशिश करती है। खुद को अपने पूर्वज के रूप में ढालने की इस उत्कट लालसा के उद्भव को समझा जाये तो सहज ही स्पष्ट हो जायेगा कि यह नर को फिर से बानर बनाकर जंगल की ओर धकेलने की तैयारियों का ही हिस्सा है। वैश्वीकरण के हंगामेदार समय में आज विश्व-मन और विश्व-मानव के लिए कोई जगह नहीं है। इसमें पूँजी के वैश्वीकरण और मनुष्य के स्थानीयकरण के संदर्भों को ठीक से देखा जाये तो जिसके पास जितनी वित्तीय पूँजी होगी उसका विश्व उतना ही बड़ा होगा, उससे रत्ती भर ज्यादा नहीं। अधिक जगह घेरनेवाले वित्तीय पूँजी रहित पुराने प्रतीक नायकों के विसर्जन की प्रक्रिया और नये नायकों को गढ़ने की लालसा को मिलाकर देखने से भी बात साफ हो सकती है। इन पुराने प्रतीक नायकों को विसर्जित करने के पहले

इनका स्थानीयकरण किया जाता है। वह समय गया, जब रामचरित के मानसीकरण से लोगों के दुखसह और परदुखकातर बनने का मार्ग प्रशस्त होता था, जब रवींद्रनाथ ठाकुर और महात्मा गाँधी सरीखे व्यक्तित्वों के विश्व-मानव के रूप में समझने के प्रचलन पर विश्वास जमाकर लोग अपने क्षेमशील आत्म-प्रसार का अभ्यास करते थे।

इस समय एक ओर अयोध्या के खास स्थान पर ही राम का मंदिर बनाने के सांप्रदायिक हठ का हुल्लड़ है तो दूसरी ओर एक समय गुजरात में जारी संहार के विरोध के संदर्भ में 'गाँधी के गुजरात' का हाय-हाय था। क्या यह राम को अयोध्या और गाँधी को गुजरात में सीमित करने जैसा नहीं है? राम को अयोध्या और गाँधी को गुजरात में सीमित करना स्थानीयकरण की प्रक्रिया का ही प्रकार्य तो नहीं है? कहीं हम अपनी मासूमियत में राम और गाँधी जैसे जनता के चित्त-नायक के विसर्जन और बाजार के वित्त-नायक की अगवानी के षड़यंत्र में तो शामिल नहीं होने जा रहे हैं? आनेवाले समय में लोग खुले-खिले चेहरे से हमारा परिचय लेंगे या यत्नपूर्वक ढकी हमारी पीठ से हमें पहचानने का हठ करेंगे? क्या पता?

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान